# आदिवासी

## संस्कृति, साहित्य और समाज

संपादक : डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

# आदिवासी

## संस्कृति, साहित्य और समाज

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

समकालीन प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

# अनुक्रमणिका


1. आदिवासी संस्कृति एवं अस्मिता का यथार्थ 17
**-डॉ. सुरेन्द्र शर्मा**

2. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आदिवासी समाज एवं संस्कृति का समीक्षात्मक अध्ययन 29
**-डॉ. धनंजय कुमार**

3. आदिवासी संस्कृति पर अस्तित्व का संकट और हिंदी उपन्यास परम्परा 36
**-डॉ. किरण ग्रोवर**

4. आदिवासी भाषा, संस्कृति तथा विकास की चुनौतियाँ 49
**-डॉ. पुनीता जैन**

5. आदिवासी समाज की लोक मान्यताओं का विश्लेषण 55
**-डॉ. मोहित मिश्रा**

6. आदिवासी जन जीवन 65
**-डॉ. शाहिद हुसैन**

7. हाशिये पर आदिवासी : साहित्य और समाज 71
**-डॉ. कामिनी**

8. संजीव के आदिवासी उपन्यास 'धार' में औद्योगीकरण एवं नारी संघर्ष 79
**-डॉ. रीना डोगरा**

9. आदिवासियों की छटपटाहट एवं उनके समाज की चुनौतियाँ 88
-डॉ. आशीष कुमार

10. हिमाचल प्रदेश में गद्दी जनजाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 97
-डॉ. रविंद्र कुमार

11. आदिवासी कथा साहित्य और आदिवासी विमर्श 106
-डॉ. आरती पराग देशपांडे

12. जेसिंता केरकेट्टा की कविता में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन 114
-डॉ. प्रिया ए.

13. आदिवासी विमर्श एवं विस्थापन 122
-डॉ. सुमन देवी

14. आदिवासी नारी का संघर्ष 130
-डॉ. आरती

15. आदिवासी संस्कृति एवं परम्परा 138
-डॉ. एमंत माधुरी ठाकुर

16. पश्चिमी उत्तर प्रदेश की गौरवशाली लोक कला : सांझी 145
-डॉ. शुचि गुप्ता

17. आदिवासी स्त्री और प्रेमचन्द युग की स्त्रियों की संवेदना का एकीकरण 151
-डॉ. परमजीत कौर, प्रेरणा ज्योति पांडेय

18. समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन 159
-डॉ. चंदा

19. प्रकृति और स्त्री की वेदना को अभिव्यक्ति देती आदिवासी जनजातीय कविताएँ 168
-सतेश कुमारी

20. आदिवासी साहित्य में आदिवासी समाज व संस्कृति का विवेचनात्मक अध्ययन 178
-डॉ. सीमा मेनारिया

21. आदिवासी सांस्कृतिक बोध और जीवन दर्शन 189
-रविन्द्र कुमार मीना

22. आदिवासी समाज, साहित्य एवं संस्कृति : वर्तमान चुनौतियाँ 200
-डॉ. शिलाची कुमारी

23. आदिवासी समुदाय की जीवन शैली एवं परम्पराएं 206
डॉ. मीना कुमारी

24. पंजाब की आदिवासी जनजातियाँ : एक परिचय 215
ज्योति

25. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी-जीवन 224
-राजलक्ष्मी जायसवाल

26. वंदना टेटे के कथा साहित्य में आदिवासी जीवन दर्शन 229
-ज्ञान्ती

27. गोदना : आदिवासियों की एक अद्‌भुत परंपरा 235
-अर्चना पाठक

28. आदिवासी समाज में कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) पर ध्यान केंद्रित करते हुए देशज ज्ञान के संरक्षण और पारिस्थितिक पुनर्स्थापन में मीडिया की भूमिका 242
-शुभम कुमार सिंह

29. आदिवासी जीवन : एक संक्षिप्त सिंहावलोकन 257
-ब्रीसियुस सोरेंग

30. आदिवासी स्त्री की पीड़ा और संघर्ष 261
-डॉ. सुरेन्द्र शर्मा

# आदिवासी समाज की लोक मान्यताओं का विश्लेषण

-डॉ. मोहित मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
आईएफटीएम विश्वविद्यालय
मुरादाबाद

---

भारत विविधिताओं का देश है, लोक साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं को अलग-अलग बाँटने के स्थान पर उसका संपूर्ण आंकलन करने पर ज्ञात होता है कि भारतीय लोक साहित्य प्रत्येक स्थान पर समान रूप से विद्यमान है। साहित्य दो प्रकार का होता है एक विशिष्ट साहित्य दूसरा मौखिक रूप जिसको लोक साहित्य माना जाता है। भारतीय लोक साहित्य का स्वरूप अत्यंत विस्तृत है। लोक साहित्य लोक का साहित्य है, जिसको लोक का, लोक के द्वारा लोक के लिए प्रस्तुत माना गया है। लोक चित्त एवं लोक मानस को समझने पर ज्ञात होता है कि लोक साहित्य का प्रारंभ आदिमकाल में लोक जीवन के संघर्ष से जुड़ता है जिसके लिए जीवित रहना एवं आहार का संग्रह करना महत्त्वपूर्ण माना गया है।

लोक सांकृतिक को जानने के लिए किसी भी जाती के लोकसाहित्य को जानना आवश्यक होता है, जिसमें उस समाज का चित्र उभर कर सामने आता है लोकसाहित्य में जनमानस के विश्वास, मान्यताएँ, संस्कार, चिंतन, मूल्य, प्रतिक्रियाएँ, परम्पराएँ सस्वर हो उठती हैं। पूर्वोत्तर के समाज की जीवनशैली के द्वारा सांस्कृतिक झांकी का परिचय उसके लोकसाहित्य के माध्यम से उभरता है। वर्तमान समय में भी यहाँ विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, मान्यताएँ एवं प्रथाएँ पूर्ववत प्रचलित है, जो यहाँ के लोक साहित्य, लोक परंपराओं से परिलक्षित होती हैं।

आदिवासी समाज मुख्यतः वन में निवास करता है आदिवासी समाज जल-जंगल से जुड़ा रहा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जल-जंगल

पारिवारिक संबंध मानता है। पूर्वोत्तर भारत के लोकसाहित्य को समझने से ज्ञात होता है कि वहाँ का मूल निवासी प्रकृति से जुड़ा हुआ है जिसमें सभी पशु-पक्षी, जीव-जन्तु एवं वृक्ष का संबंध उनके लोक गीत से प्रस्तुत होता है। पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों में भाषा, रीति-रिवाज, त्यौहार, परंपरा एवं वेश-भूषा का अन्तर है परंतु सभी का जुड़ाव प्रकृति से एक समान प्रकार से देखा जा सकता है। इस क्षेत्र के लोक का स्वरूप मिला-जुला है जिसमें वन, वर्षा, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु का समान संदर्भ है। पूर्वोत्तर जनजाति का स्वभाव प्रकृति का सहयोगी-सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेद-भाव और छल-कपट से दूर होता है उनका जीवन सहज-सरल होता है जिसके कारण वे अन्याय के विरोधी और सामाजिक न्याय का सम्मान करते है।

लोक साहित्य का प्रस्तुतिकरण लोकमानस के द्वारा सहज भाव से अभिव्यक्त होता है, इसके संपूर्ण अध्ययन से संपूर्ण समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत होता है, जिसका अध्ययन किए बिना किसी देश या जाति की सभ्यता, कला, साहित्य, सामाजिक विकास परंपरा का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। सामाजिक मान्यताओं के द्वारा सामान्य जन के हृदयोद्‌गार के माध्यम से सामान्य जनता के जीवन का दर्पण माना जा सकता है। भारतीय परिदृश्य में लोक शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यह शब्द संस्कृत की लोक दर्शन धातु धर्त्प्रत्यय जोड़ने से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है देखना, अवलोकन करना। लोक शब्द का एक अर्थ आवैदिक भी है। पाणिनि ने भी वेद से प्रथक लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। आचार्या भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में नाटक की लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महाभारत में लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के रूप में किया गया है।

**मिथक**- मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ शब्द से निर्मित किया गया है हम कह सकते है की मिथक शब्द हिंदी भाषा में प्रतिरूप बन कर प्रस्तुत हुआ है। मिथ शब्द का उद्‌भव यूनानी शब्द मिथास से हुआ है जिसका अर्थ है- मुँह से निकला हुआ अतः इसका प्रयोग मौखिक कथा से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि कथा भी सुनी-सुनाई जाती थी। हिन्दी में मिथक के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं।



मिथक आदिकाल से निरंतर लोक मानस की विकास यात्रा के साथ ही प्रसारित होते रहे। सरल-सहज शब्दों में मिथकों का संबंध एक कथा-किस्से से जुड़ा होता है, जिसमें सृष्टि और उसके उपकरणों के उद्‌भव तथा उसकी गतिक्रिया और उसके अबूझ व्यापार, मूलभूत मानवीय क्रियाओं और समस्याओं, प्रतिरूपों और तत्वों, जीवन-मरण आदि विषयों को लेकर आरंभ काल से ही प्रचलित अनेक धरणाएँ, विश्वास और कर्मकाड प्रचलित हो गए। मिथक को मनुष्य के मानसिक और भौतिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों के कारण समाज में स्थापित होने का स्थान मिला। प्रारम्भिक दौर में मनुष्य ने प्राकृतिक स्वरूप में होने वाले बदलावों से भयभीत होकर जो बचाव के तरीके निकले वे समय के साथ मिथक में बदलते चले गए। आरंभिक मनुष्य की ये कल्पित अतिमानवीय शक्तियाँ कलांतर में मिथक बनकर उभरती हैं। इस प्रकार धार्मिक विश्वास और मिथक में अटूट संबंध स्थापित होता चला गया। मिथक के विकास के पीछे मानव कल्याण और रक्षा का भाव अवश्य निहित था परंतु समाज के विकास की गति में मिथक सत्य का स्वरूप लेते चले गए। लोक साहित्य में मिथक का मिश्रण बहुत ही बारीकी से हुआ है आज इसको लोक से दूर कर पाना एक कठिन कार्य प्रतीत होता है। मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय हो सकते है, क्योंकि इनमें ज्ञानेन्द्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव-पुंज निहित हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान है। मिथक के अंतर्गत धर्म, लोकसाहित्य, मानव-विज्ञान, समाज-विज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाएँ ये सब आ जाते हैं। इसलिए मिथक आज की आलोचना का एक सशक्त और लोकप्रिय तत्व बनता जा रहा है। समकालीन कृतियों का आंकलन मिथक को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

भारत बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश रहा है। इसकी राष्ट्रीय एकता का प्रमुख तत्व है भाषाई अनेकता में एकता। भाषा का सच्चा कार्य लोगों को जोड़ने का होता है तोड़ने का नहीं। वस्तुतः भाषा संस्कृति की संवाहिका है, इसलिए उसकी पहचान भी कही जाती है। दोनों में अपने मूल आधार को सुरक्षित रखकर अपने स्वरूप परिवर्तन की क्षमता

होती है। देश में भाषायी परिवारों की विभिन्न भाषाएँ एक वृहद परिवार के रूप में पनपती और विकसित होती रही हैं। देश की वर्तमान स्थिति में विभिन्न परिवारों की भाषाएँ आज की बहुभाषिकता की वास्तविकता है। आर्य परिवार, द्रविड़ परिवार, आस्ट्रिक परिवार, तिब्बती-बर्मी परिवार उल्लेखनीय हैं। देश में बहुभाषिकता के साथ बहुसांस्कृतिक भी है। यहाँ राष्ट्रीय संस्कृति न एक है न एक हो सकती है, न भाषा एक है और न एक हो सकती है। इसमें बहुलता, बहुवचन के लिए पर्याप्त स्थान प्राप्त से रहा है। देश में अनेक क्षेत्र, धर्म, भाषा, शैली, रंग-रूप इस बहुलता का सत्यापन करते हैं। हमारी संस्कृति बहुवचन की संस्कृति है। यहाँ एक समान कुछ भी नहीं है।

लोक अर्थात जन सामान्य में प्रचलित मान्यताएँ, मिथक, कहानी, विश्वास है उनको लोक साहित्य कहा जाता है एवं लिखित भाषा में उपलब्ध सामग्री को विशिष्ट साहित्य माना जाता है। लोक शब्द के स्थान पर जर्मन विद्वानों ने विसा का सर्वप्रथम उल्लेख किया। इतिहास में जो भी सुंदर, तेजस्वी तथ्य है वे लोक में ही सुरक्षित है, हमारी कृषि, हमारी अर्थव्यवस्था हमारा ज्ञान, साहित्य कला के नाना रूप भाषाएँ एवं शब्दों के भंडार जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत, कथाएँ, आचार-विचार, व्यवहार सभी कुछ भारतीय लोक में ओत-प्रोत है। इस संदर्भ में वसुदेव सरन अग्रवाल की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि भाषा, शब्द और उसकी परिभाषा अलग-अलग संस्कृति को हमारे सामने स्पष्ट कर देता है। हमारी लोक की परिभाषा विसा की संकुचित परिभाषा के सम्मुख बहुत अधिक व्यापक है, जो संपूर्ण समाज को समग्रता में देखने की दृष्टि प्रदान करती है।

वसुदेव सरन अग्रवाल की परिभाषा से स्पष्ट होता है की लोक की अवधारणा विस्तृत है जिसमें विदेशी विद्वान के द्वारा नहीं समझा जा सकता भारतीय समाज भारतीय परंपरा को विदेशी मापदंड से समझा नहीं जा सकता। विदेशी अवधारणा के आधार पर भारतीय मान्यताओं का मूल्यांकन करना संभव नहीं है। भारतीय संस्कृति एवं भारतीय लोक को समझने की प्रविधि भारतीय होनी चाहिए विदेशी प्रविधि या अवधारणा के आधार पर भारतीय संस्कृति को समझना संभव नहीं होता है। संस्कृति को जीवन में शामिल करने वाले व्यक्ति ही लोक की परिभाषा प्रस्तुत कर सकता है साथ ही उसका विस्तृत चित्रण कर सकता है।



हजारी प्रसाद द्विवेदी कृ "'लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, उनको उत्पन्न करते हैं।" पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार भारत में सभ्यता का विकास ही नहीं हुआ है। इसके आधार पर भारतीयों को देहाती मान लिया गया, लेकिन भारतीय परंपरा में या भारतीय संस्कृति में लोक में ही सभ्यता जीवित है जीवित ही नहीं बल्कि लोक के कंधे पर बैठकर खिलखिला रही है। लोक अपने कंधों पर सभ्यता को युगों युगों से चलता आ रहा है साथ ही उसका निरंतर विकास भी कर रहा है। शब्दों के द्वारा निर्मित अवधारणा का एक सटीक उदाहरण लोक एवं फोक है जिसके आधार पर अन्तर समझना सरल हो जाता है।

वर्तमान समय में प्रचलित शब्द पब्लिक पॉलिसी जो चर्चा का विषय बना हुआ है, उसका संदर्भ लिया जाए तो पब्लिक पॉलिसी को हिन्दी में लोक नीति समझने की भूल की जाती है यह भी लोक के समान ही देखा जा सकता है। जब सामूहिक संदर्भ लिया जाता है तो लोक नीति से जोड़ दिया जाता है। लोक और जन के भेद को नष्ट कर देते है। दूसरी ओर नीति और पॉलिसी दोनों के भेद को भी समझना आवश्यक होता है। पॉलिसी की परिभाषा विदेशी विद्वानों का मूल आधार "to basic for making a policy fear and problem" भय या समस्या उत्पन्न होने पर पॉलिसी का निर्माण किया जाता है इसका विश्लेषण करते हुए उनका कहना भी है, जब किसी प्रकार का भय या डर का वातावरण बनता है तो किसी पॉलिसी की आवश्यकता होती है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि किसी नीति की आवश्यकता होती है लेकिन शब्दों के चयन का महत्त्व होता है किसी नीति के निर्माण का आधार डर या समस्या नहीं बल्कि स्नेह एवं विश्वास है जो जनता के प्रति स्नेह और शासन के प्रति विश्वास का महत्त्व है, वह सहचर्य भाव से रही जिसमें मानव कल्याण के उदेश्य से बनाई जाए। जिसमें एक पारिवारिक धारणा मुख्य होती है। नीति और पॉलिसी के बीच के अन्तर को समझना आवश्यक होता है।

**जीववाद**- यह एक सार्वजनिक विशेषता है उन लोगों में सभी स्थान जीवात्माओं के स्थान हैं। जानवरों, पौधों, वृक्षों तालाबों, नदियों, पत्थर,

पहाड़ सभी में जीव का निवास स्थान है। मृतक भी इसके अपवाद नहीं हैं क्योंकि ये आत्मा के रूप में रहते हैं या स्तनोन के रूप में उसकी पुनः प्राप्ति होती है। मध्य भारत में सन्यास, मुंडन एवं अपने मृतक की आत्मा की उपस्थिति में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार बीमारी अकाल, सूखा, पानी की कमी, जमीन में कम अन्न होना अधिक मृत्यु आदि तभी होता है जब अलौकिक प्राणी या बुरी आत्माओं की यथोचित पूजा नहीं की जाती एवं समय पर बली नहीं दी जाती।

**प्रकृतिवाद-** आदिवासियों का पूरा जीवन प्रकृति पर आधारित है। स्वभाव से कृतज्ञ होने के कारण ये वनवासी प्रकृति के प्रत्येक उपादान के प्रति कृतज्ञता समर्पित करते है। हरे भरे वृक्ष जीवन में हरियाली, काले-काले मेघ जल से..., सूर्य अपने प्रकाश से नींद दूर करता है, चंद्रमा शीतल किरणों से उष्णता को शांत करता है, नदियाँ जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। धरती कृषि फल-फूल देकर भूख शांत करती है, पशु-पक्षी नृत्य गान काला की शिक्षा देते है, पर्वत नवोल्लास भरते हैं। सूर्यपुजा, चंद्रपूजा, वृक्षपूजा, पशु-पक्षी वंदना पर्वत आराधना धरती स्तुति नक्षत्रों के दर्शन जलाशयों के प्रति श्रद्धा समस्त आदिवासी समाज में प्रचलित है। सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में प्रकृति देवी की अर्चना अनिवार्य मानी गई है। समाज ने जो अपने उपयोग के लिए उचित माना उसका प्रयोग अपने बिम्ब रचने में सहायक सिद्ध होते है। पूर्वोत्तर भारत के समाज की निकटता प्रकृति से अधिक होने के कारण यह पूरा समाज प्रकृतिवाद के प्रति समर्पित दिखाई देता है।

पुराने वृक्षों में देवी-देवताओं का निवास मानकर पूजा जाता है। पुराने तालाबों, गहरे जल प्रवाहों में आधी तूफान में भूत-प्रेतादि का विश्राम स्थान माना जाता है। इनमें निष्ठा एवं समय-समय पर पूजा करना आवश्यक माना गया है। इनमें यह दृढ़ आस्था है, कि विपत्ति के क्षणों में ये देवता भूत-प्रेत आदि रक्षा करते है और प्रसन्न होकर सुख-समृद्धि का वरदान देते हैं लेकिन अप्रसन्न होने पर ये अद्‌भुत शक्तियाँ विनाश के दृश्य उपस्थित करने में तनिक नहीं हिचकती।

**टोटमवाद एवं निषेध-** आज तक जीवित प्राचीन जन जातियों की लगभग सार्वभौम विशेषता यह है कि लोगों ने अपने कविलों के प्रदेशों के



नाम पशुओं या पेड़-पौधों के नाम रखे। इस प्रकार जानवरों या पौधों के नाम रखने की प्रथा प्रतीक पूजावाद ओअमिज्म या टोटमवाद कही जाती है। टोटम शब्द अमेरिका की अजीवव्वा जनजाति की बोली के एक शब्द के आधार पर बना है। इसका अर्थ है- प्रतीक या कबीले का परिचय चिह्न।

जनजाति में सम्मिलित प्रत्येक कबीले का संबंध किसी पशु या पौधे से होता है जो उसका प्रतीक चिह्न टोटम कहलाता है। कबीले के सदस्य अपने को टोटम जैसा और उसका वंशज मानते हैं। टोटमवाद के साथ कुछ निषेध और निश्चित प्रतिबंध भी जुड़े होते हैं।

आदिवासियों के गोत्र चिह्नों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव किस प्रकार अपने आसपास के वातावरण से प्रभावित होता है तथा किन-किन रूपों में वह उन पदार्थों पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, कीट-पतंगों, पर्वत, तालाबों एवं विशिष्ट पल्लव-फलों से आतंकित प्रभावित और अभिभूत होता है जिनके बीच वह विचरण करता है तथा जिनसे वह निरंतर उपकृत होता रहता है।

गोत्र चिह्नों के प्रति जो इन अरण्य मानव में स्नेह-प्रीति एवं आदर कि भावना के साथ भय है उसका भी कुछ कारण है। आदि मानव ने अज्ञानवश कई अंधविश्वासों को अपनाया उन्हें विकसित किया और उनके आधार पर कई ऐसी मान्यताओं की और आकृष्ट हुआ जिनमें वास्तविक तथ्य कुछ भी नहीं है लेकिन भय आशंका आदि मनोविकार अवश्य विद्यमान है। इसके बावजूद यह मानना उचित है कि गोत्र चिह्नों के कारण सैकड़ों अन्य पशु विनाश से बचे और हजारों पेड़-पौधे कुठारा से यह भी स्पष्ट होता है कि आदिवासी बड़े कृतज्ञ होते है और अपने उपकारी सरंक्षक कल्याणकारी के प्रति अधिक श्रद्धा प्रदर्शित करते है कि उसे देवता के रूप में मानने लगते है। गोत्र चिह्नों कि स्वीकृति में कृतज्ञता एवं भय दोनों का एकीकरण स्वीकार किया गया है।

आदिकाल का मानव जब अपने वंश कि लड़ी को लेकर बैठता था तो पीछे की तरफ ढूँढते-ढूँढते कई जनजातियां सूर्य-चंद्र तक पहुँच जाती थीं। कोई अपना उद्‌भव सूर्यवंशी या चंद्रवंशी कह देती थी कोई तो किसी वृक्ष को या पशु-पक्षी को वंश का आदि-प्रवर्तक कल्पित कर लेती थी। कहा जाता है कि किसी आदिवासी की रक्षा सूर्य-आक्रमण से मोर ने की

थी इसलिए आदिवासी समूह का गोत्र चिह्न मोर (मयूर) माना गया इसी प्रकार एक-एक समय एक आदिवासी का शिशु जंगल में सो रहा था। सूर्य की किरणें उसके मुख पर पड रही थी। अचानक एक साँप आकार अपने फॅन फैलाकर रूपनदिया का परिचय दिया इसलिए कुछ के गोत्र चिह्न सर्प बन गया। पूर्वोत्तर भारत या समाज में लोक का जो बिम्ब या गोत्र का निर्माण हुआ वह प्राकृतिक संरचना से ही प्रेरित एवं ग्रहण किए प्रतीत होते है।

आदिवासियों में हजारों गोत्र चिह्न है- शेर, मगर, कछुआ, बंदर, रीछ, मछ्ली, चुहिया, गिलहरी, बगुला, हंस, सुअर सांड, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, शैमल, पीपल, साल, आम आदि के पेड़ मोर नेवला, साँप, मृग, सेही, चीता, बकरा, नदी आदि।

**निषेध**- अग्रेजी में टैबू अमुक कापेन करना कुछ न खाना आदि समाज में अनिवार्य रूप में मान्य है।

- गोत्र चिह्न वाले पशु-पक्षियों का मांस खाना वर्जित।
- गोत्र चिह्नों का अनादर करना अनुचित माना जाता है।
- देव मंदिरों के पास के पेड़ को काटने पर प्रतिबंध।
- एक ही गोत्र में विवाहवर्जित माना जाता है।
- टोटम के पशु पक्षी की मृत्यु होने पर संबंधित जनजाति को अपने सगे संबंधी की तरह शोक मानना और शव को विधिवत जमीन में दफनाना होता है।
- टोटम संबंधी पशु पक्षी रक्षक होते है उनके प्रति अनास्था का भाव व्यक्त नहीं किया जा सकता।
- टोटम चिह्नो को शरीर के विभिन्न अंगों पर गुदवाना आपकी धार्मिकता का प्रतीक होता है।
- गोत्र चिह्न को स्मरण किए बिना मदिरापान वर्जित माना जाता रहा है।
- धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव नृत्य आदि के समय गोत्र चिह्नों की अवहेलना करना अनुचित माना जाता है।
- टोटम संबंधी वृक्ष पुष्प लता आदि का काटना अनुचित होता है।
- जंगल में भ्रमण करते समय गोत्र चिह्नों के प्रति पूर्वज के लिए



वंदना करनी चाहिए किसी भी दशा में तिरस्कृत नहीं करना चाहिए।

जनजातियों का विश्वास है कि निषेध का उल्लंघन करने से उन लोगों पर कोई भयानक विपत्ति आ सकती है। इस तरह निषेध एवं दूसरे प्रकार के धार्मिक विश्वास है जो किसी विश्वास की नकारात्मक प्रथा हैं।

**जादू**- धर्म के बराबर महत्त्व रखता है

**पूर्वज पूजा**- जनजातियों के लिए पूर्वजों की क्रियाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण है, उनके धार्मिक विश्वासों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य की शक्ति एवं पहुँच नियंत्रित व सीमित है, लेकिन पूर्वज पूजा द्वारा वह उसको प्राप्त कर लेता है।

**बहुदेववाद**- वनवासियों में मनोकामना पूर्ति की आकांक्षा ने देवी-देवताओं की मान्यताओं को प्रेरित किया है। फलस्वरूप समयानुकूल कई नए देवता आदिवासी समाज में श्रद्धा के पत्र बने कई देवताओं के प्रति आस्था एवं विश्वास उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं- सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, धरती, डांगरिया बाबा, मनसा नारायणदेव आदि।

**आदिवासी लोककथाएँ**- ये कथाएँ आदिवासियों के सुख-दुख प्रदर्शित करती है इनके सामाजिक संगठन की प्राचीन रूप-रेखा प्रस्तुत करती है तथा धार्मिक विश्वासों का विस्तृत इतिहास बताती है। ये कथाएँ कौतुहल से परिपूर्ण हैं क्योंकि चमत्कार इन जनजातियों को अधिक प्रिय है। सतत सहचर्या के कारण वृक्ष-पुष्प, पशु-पक्षी, नदी-नाले, छोड़ बड़े पर्वत इन कथाओं के अंग बन गए हैं। बड़े-बड़े वृक्ष इन लोगों के साथ नाचते-गाते हैं, विभिन्न रूपरेखा के पशु-पक्षी इनके साथ भोजन करते हैं और सुख-दुख की घड़ियों में साथी बनते हैं। चील संदेश देती है, कबूतर मधुर गीत सुनता है, काग भविष्य का संकेत करता है।

आदिवासी समाज में प्राचीलित धारणा के आधार पर कहा जा सकता है कि यह समाज जल, जंगल और जमीन जैसे विषय पर गंभीरता दिखाता है। प्राकृतिक संसाधनों का दुर्पयोग निषेध करता है। वर्तमान सभ्य समाज गंभीर विषय को भी साधारण रूप में देखता है जो भविष्य में मानव अस्तित्व के लिए संकट हो सकते है। परंतु प्रकृति के बीच जीवन-यापन करने वाले आदिवासी संसाधनों के महत्त्व को जानते है। आदिवासी समाज के प्रतीक, मान्यताएँ, जीवन मूल्य एवं कथाओं के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों

के संरक्षण का संदेश प्राप्त होता है, इनके प्रकृति प्रेम का संदेश इनके प्रतीक के द्वारा प्राप्त होता है। यह जीवन को साधारण रूप से जीते है। अधिवासी में सूर्य-चंद्र, पर्वत-पहाड़, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, अग्नि-हवा, जल एवं धरती का पूजन होता है। यह समाज अपने प्रतीक के प्रति अधिक संवेदन शील होता है। जिनका सम्मान सभी को करना अनिवार्य होता है।

**संदर्भ ग्रंथ :**


1. उपाध्याय, कृष्णदेव, भारत में लोक साहित्य, साहित्य भवन, इलाहाबाद, वर्ष-1998
2. उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, वर्ष-1995
3. उप्रेती, कुंदनलाल, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, वर्ष-1971
4. कौशिक, जय नारायण, लोक साहित्य और संस्कृति-दिग्दर्शन, अविराम प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2008
5. गुप्ता, रमणिका, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, वर्ष-2009
6. दुबे, सत्य नारायण, लोक साहित्य की रूपरेखा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष-2003
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-1989
8. प्रसाद, माता, मनोरम भूमि अरुणाचल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-1995
9. भागवत, दुर्गा, भारतीय लोक साहित्य की रूपरेखा, भूमिका प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-1991
10. शर्मा, कृष्णदेव, लोक साहित्य, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-1992
11. सत्येन्द्र, लोक साहित्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, वर्ष-1962
12. सिन्हा, विद्या, भारतीय लोक साहित्य परंपरा एवं परिदृश्य विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष-1997
13. www.hindisamay.com
14. www.rachnakar.org